सहजानन्द-वस्तुतथ्य

क्षु० सहजानन्द वर्णी

सहजानन्द शास्त्र
1 2 2 2

प्रकाशक:—
भारत वर्षीय वर्णी जैन साहित्य मन्दिर
१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

रचयिता आध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द महाराज

ॐ आत्म-कीर्तन ॐ

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता, द्रष्टा, आतमराम ।।टेक।।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान ।।१।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।
सुख दुख नाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान।।३।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णू बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम।।४।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम ।।५।।

सहजानन्द-वस्तुतथ्य

धर्मपालनका प्रयोजन शाश्वत सहज सत्य आनन्दका लाभ पाना है। पदार्थका धर्म पदार्थका स्वभाव है, मुझ आत्माका धर्म आत्मस्वभाव है, अन्य पदार्थका धर्म उस अन्य पदार्थका स्वभाव है। जब मेरा धर्म किसी भी पर पदार्थमें है ही नहीं तो परका आश्रय करनेसे अर्थात् परको उपयोगमें बसानेसे धर्म कैसे मिलेगा। धर्मलाभ तो सहज चैतन्यस्वभावमय अन्तस्तत्त्वके आश्रयमें है। एतदर्थ स्वभावदृष्टि उपादेय है। स्वभावदृष्टि करनेके लिये ही प्रमाण और नयोंसे वस्तुपरिचय करानेके अर्थ प्रभुका उपदेश है, जिसका प्रकाशन और प्रसारण महर्षि संत पुरुषोंने किया है।

(२)

प्रमाण और नयोंसे पदार्थका परिचय होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान व केवलज्ञान ये ५ प्रमाण हैं, इनमें प्रतिपादक प्रमाण श्रुतज्ञान है और उसके द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिक नय ये दो अंश हैं। श्रुतज्ञान सम्यक् ज्ञान है और द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिक नय अथवा निश्चयनयव व्यवहारनय सम्यक् ज्ञानांश हैं। प्रमाण द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक दोनों नयोंके विषयको प्रधानतया जानता है। द्रव्यार्थिकनय अपने प्रतिपक्षनय (पर्यायार्थिकनय) को गौण करके अपने विषयको प्रधानतया जानता है। पर्यायार्थिकनय अपने प्रतिपक्ष नय (द्रव्यार्थिकनय) को गौण करके अपने विषयको प्रधानतया जानता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com

(३)

प्रमाण, सम्यग्ज्ञान, सकलादेशी, सर्वावलोकन, ये सब अनर्थान्तर हैं। द्रव्यार्थिकनय, भूतार्थनय, शुद्धनय, परमशुद्धनिश्चयनय ये प्रायः एकार्थवाचक (पर्यायवाची) शब्द हैं। पर्यायार्थिकनय, अभूतार्थनय, अशुद्धनय, व्यवहारनय ये प्रायः पर्यायवाची (एकार्थवाचक) शब्द हैं। दोनों नय प्रमाणरूप सम्यक्श्रुतज्ञानके अंश होने से सत्य हैं। उपचार इन नयोंसे पृथक् है। निश्चयनयका विषय अभेद या अभिन्नकारकत्व है। व्यवहार नयका विषय भेद या निमित्त नैमित्तिकभाव आदि सम्बन्ध बताते हुए वस्तुपरिणमनका निर्णय है। उपचारका विषय भिन्नकारकत्व है, अतः उपचार मिथ्या है।

(४)

जब हम निश्चयनयसे स्वयंको परखते हैं तो वहां एक निज द्रव्य ही दृष्टिमें आता है। परम शुद्ध निश्चयनयकी दिशामें तो अभेद स्व दृष्टिमें आता, शुद्ध व अशुद्ध निश्चयनयकी दिशामें अभिन्नकारकत्व दृष्टिमें आता है। निश्चयनयकी दृष्टिमें एक निज द्रव्य ही दृष्टिमें होनेसे अन्य द्रव्यकी दृष्टि न होनेके कारण अध्यवसानभाव व्यक्त नहीं होता और तब उपयोग स्वभावदृष्टिमें आ जाता है। अशुद्धनिश्चयनयके संयत प्रयोगमें भी अन्य द्रव्यकी दृष्टि न होनेके कारण परमशुद्धनिश्चयनयका स्पर्श होकर स्वभावदृष्टि होती है। शुद्धनिश्चयनयके संगत प्रयोगमें परमशुद्धनिश्चयनयका स्पर्श होकर स्वभावदृष्टि होती है। परमशुद्धनिश्चयनयके प्रयोगमें शीघ्र स्वभावदृष्टि होती है। स्वभावदृष्टि ही धर्मपौरुष है।

(५)

जब हम व्यवहारनयसे स्वयंमें हुई दशाको परखते हैं कि

कर्मविपाकका निमित्त पाकर मेरी अज्ञानपरिणतिसे यह विकारदशा हुई है तब यह अनुशासन होता है कि यह विकारदशा औपाधिक है, परभाव है, मेरा स्वभाव नहीं, मेरा सहजभाव नहीं; मेरा स्वभाव तो यह सहजज्ञानानन्दस्वरूप है, अतः इस विकारसे लगाव रखना अहित है, अकर्तव्य है। इस नयसे अपनेको छाननेपर विकार विभाव समस्त अनात्मतत्त्व शुष्क बलहीन निराधार होकर बाहर होजाते हैं और पारिशेष न्यायसे उपयोगमें नितान्त केवल चैतन्यस्वभाव रह जाता है। यों व्यवहारनयसे वस्तुतथ्य देखनेवाला ज्ञानी पुरुष विकारसे हटकर स्वभावदृष्टिमें आजाता है। स्वभावदृष्टि ही धर्मपौरुष है।

(६)

उपचारभाषामें जब वर्णन हो कि 'पुद्गलकर्मने जीवको रागी बनाया' तब कोई ऐसा ही सत्य समझ ले तो वह कुछ न रहा, विवश हो गया, स्वभावदृष्टिको वहां अवसर ही नहीं। उपचारमें भी कोई नियत सम्बन्ध ही क्यों बताया जाता, अटपट किसी का भी किसी के साथ कारकपना क्यों नहीं कहा जाता इसकी खोज करनेपर विदित होता है कि इस कथनमें कोई ईषत् प्रयोजन है, अन्यथा अनर्थ हो सकता है, शरीरको एकान्तः अजीव अवधारित कर लेनेपर पशु आदि की हिंसा करनेमें भी कई दोष न माना जायगा और कसाईखानेको प्रोत्साहन मिल जावेगा। सो उपचारका मूल तथ्य समझे बिना उपचार कथनको ही सही मान लेनेमें अकल्याण है, किन्तु उसके मूल ईषत् प्रयोजनको समझकर मात्र उस प्रयोजनके प्रति वर्तन करना विवेक है।

(७)

उपचार एक वस्तुको दूसरी वस्तुका कर्ता भोक्ता स्वामी आदि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

रूपमें आख्यान करता है, किन्तु एक वस्तु दूसरी वस्तुका न कभी कर्ता हुआ न कभी हो सकेगा, अतः उपचार मिथ्या है। उपचार और व्यवहार दोनोंका विषय अलग-अलग है, फिर भी कहीं-कहीं उपचार कथनको भी व्यवहार शब्दसे कहा है और कहीं व्यवहारकथनको ही व्यवहार शब्दसे कहा है, वहां यह विवेक करना आवश्यक है कि यह व्यवहार उपचारार्थक है, अतः मिथ्या है और यह व्यवहार सम्यक् श्रुतज्ञानका अंशरूप है अतः सम्यक् है। जैसे सुख शब्दका प्रयोग सांसारिक सुख व वीतराग आनन्द दोनोंके लिये किया गया है तो वहां विवेक करना पड़ता है कि यह सुख शब्द किमर्थक है, तथा धर्म शब्दका प्रयोग शुभभाव वीतरागभाव दोनोंके लिये किया जाता है तो वहां विवेक करना पड़ता है कि धर्म शब्दका प्रयोग किमर्थक है।

(८)

अपना अखंड शाश्वतभाव भूतार्थ है, भेदरूप व अशाश्वतभाव अभूतार्थ है। द्रव्य गुण पर्यायका कथन, सात तत्त्व नव पदार्थोंका कथन, शुद्ध अशुद्ध पर्यायों आदिका कथन अभूतार्थ है। यों अभेद प्रतिपादक भूतार्थ व भेदप्रतिपादक अभूतार्थ दोनों सत्य हैं। अभूतार्थ नयके छोड़नेसे तीर्थविच्छेद हो जायगा, भूतार्थनयके छोड़नेसे तत्त्वविच्छेद हो जायगा। किसी-किसी प्रकरणमें भूतार्थका अर्थ सत्यार्थ व अभूतार्थका अर्थ असत्यार्थ किया जाता है। वहां यह विवेक करना होगा कि यहां भूतार्थका अर्थ अभेदप्रतिपादक है या सत्यार्थ है इसी प्रकार अभूतार्थका अर्थ भेदप्रतिपादक है या असत्यार्थ है।

(९)

खुद खुदके विकारमें निमित्त नहीं हो सकता, क्योंकि विकार विपरीत भाव है। यदि खुद खुदके विकारमें निमित्त हो जाये तो उसमें विकार सदा होता ही रहनेका प्रसंग आ जायगा, क्योंकि विकारका जैसे खुद उपादान है ऐसे विकारका निमित्त भी खुदको मान लिया गया, तो अब विकार होनेमें क्या बाधा रही, यों फिर विकार स्वभाव ही बन जावेगा। किन्तु, ऐसा है नहीं, क्योंकि विकारमें तो घटाव बढावके अनेक विषमस्थान पाये जाते, स्वभावमें घटाव बढ़ाव होता ही नहीं, स्वभाव तो शाश्वत एकरूप होता है। इस तथ्यके परिचयसे अपनेको अविकारस्वभावी शुद्ध स्वच्छ ज्ञानमय अनुभव करनेकी प्रेरणा मिलती है।

(१०)

विकारका निमित्त परसंग ही होता है, क्योंकि विकार सहज स्वभावके अनुरूप नहीं होता, उपाधिके अनुरूप होता है। यह भी एक वस्तुस्वभाव है कि अशुद्ध उपादान पर निमित्त (उपाधि) सान्निध्य में ही उपाधिके अनुरूप अपनी परिणमनशक्तिसे विकाररूप परिणम जाता है। इस तथ्यके परिचयसे यह दृढ़ प्रतीत हो जाता है कि विकार मेरा स्वरूप नहीं, विकाररूप परिणमनेका मेरा स्वभाव नहीं, विकार तो परभाव है, नैमित्तिक भाव है, मैं अविकार सहज चैतन्य स्वरूप हूं। इस तथ्यके प्रकाशसे अपनेको अविकारस्वभावी शुद्ध स्वच्छ ज्ञानमय अनुभव करनेकी प्रेरणा मिलती है।

(११)

निमित्त उपादानमें कुछ करता नहीं क्योंकि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्यमें अत्यंताभाव है, किसी द्रव्यके द्वारा अन्य द्रव्यका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

गुणोत्पाद नहीं किया जा सकता अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं परिणम सकता। ऐसा होते हुए भी विकार परिणमन निमित्तसान्निध्य बिना नहीं हो सकता, क्योंकि निमित्तयोग बिना तो उपादान स्वयंके ही सत्त्वके कारण स्वभावपर्यायरूप ही परिणमेगा। ये दोनों ही तथ्य हैं। अकर्तृकर्मत्वकी श्रद्धासे कायरताका विनाश होकर शौर्य प्रकट होता है। निमित्तनैमित्तिकभावकी श्रद्धासे अविकार स्वभावकी सुगमतया दृष्टि हो जाती है।

(१२)

वस्तुस्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिक भाव दोनों एक साथ अविरोधरूपसे रहते हैं। निमित्त और उपादान दोनोंकी सत्ता अपनी-अपनी अलग है सो प्रत्येक सत् मात्र अपनेमें ही उत्पाद व्यय करता है, इस कारण वस्तुस्वातंत्र्य अभेद्य है। विकाररूप परिणमनेका किसी भी सत् का स्वभाव नहीं, सो मात्र स्वयंकी सत्ताके ही कारण कोई पदार्थ विकारपरिणमन नहीं करता। परसंगके समय ही उपादान अपनी परिणमनशक्तिसे अपनेमें विकाररूप उत्पाद करता है। यों विकारपरिणमनमें निमित्तनैमित्तिकभाव प्रतिषिद्ध हो ही नहीं सकता।

(१३)

स्वभाव पर्यायें तो ज्ञप्तिनय व उत्पत्तिनय दोनों दृष्टियोंसे नियत (क्रमबद्ध) हैं, विभाव पर्यायें ज्ञप्तिनय से तो नियत हैं, किन्तु उत्पत्तिनयसे अनियत हैं। सर्वज्ञ, अवधिज्ञानी आदि द्वारा भूत, भावी, वर्तमान अर्थको जान लेनेकी विधि ज्ञप्तिनय है और निमित्तसान्निध्यमें उपादानके परिणम जानेकी विधि उत्पत्तिनय है। स्वभाव विभाव समस्त पर्यायें सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात होगये, यों ज्ञप्तिनयसे नियत

हैं। स्वभाव पर्यायें स्वप्रत्ययक होनेके कारण उत्पत्तिनयसे भी नियत हैं। विभाव पर्यायें स्वपरप्रत्ययक होनेके कारण उत्पत्तिनयसे अनियत हैं। जिसके जहां जब जिस विधानसे जो द्रव्य भाव पर्याय होवेगी उसके वहां तब उस विधानसे होता हुआ ही विशिष्टज्ञानियों द्वारा ज्ञात होता है अतः दोनों नयोंके विधानमें विरोध नहीं है।

(१४)

निश्चयसे पहिले व्यवहार है या निश्चयानुभूतिके समय व्यवहार है या निश्चयके साथ व्यवहार है या निश्चयके बाद व्यवहार है इस प्रश्नके समाधान प्रश्नगत चारों बातें हैं। इस सबका स्पष्टीकरण वक्ष्यमाण चारों विवरणोंसे मिल जावेगा। व्यवहारसम्यक्त्वका व्यपदेश चार प्रकारकी परिणतिके निर्देशनके लिये किया जाता है जिसका सम्यक्त्वके साथ सम्बन्ध साक्षात् अथवा परम्परया अथवा संभावना आदि किसी न किसी प्रकारसे रहता है। (१) निश्चयसम्यक्त्वहेतुभूत, (२) निश्चयसम्यक्त्वानुभूतिकालवृत्तिरूप, (३) निश्चयसम्यग्दृष्टिप्रवृत्तिरूप, (४) निश्चयपाश्चात्य।

(१५)

निश्चय-सम्यक्त्व-हेतुभूत व्यवहार सम्यक्त्व वह है जहां निश्चय सम्यक्त्व तो प्रकट नहीं हुआ, किन्तु उसके हेतु सात तत्त्वोंका अभ्यास, श्रद्धान व अष्टाङ्गप्रवर्तन आदि उस प्रकार चल रहा है जैसा कि उन तत्त्वोंका स्वरूप है ऐसा प्रयत्न निश्चयसम्यक्त्वहेतुभूत व्यवहार है। इसमें होनेवाले विज्ञान पौरुष, मंदकषाय, स्वरूपदिग्दर्शन आदिका निमित्त पाकर सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंकाशैथिल्य होता, फिर करणलब्धिमें उपशमादि होनेपर निश्चयसम्यक्त्व प्रकट होता। यहां तो सम्यक्त्व होनेके लिये प्रयत्न है, अतः निश्चित हुआ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

कि यह व्यवहार सम्यक्त्व (निश्चय–सम्यक्त्वहेतुभूत व्यवहारसम्यक्त्व) निश्चयसम्यक्त्वसे पहिले है। इसका भी विवरण आगममें अनेक जगह है।

(१६)

निश्चयसम्यक्त्यानुभूतिकालवृत्तिरूप व्यवहारसम्यक्त्व वह है जो निश्चयसम्यग्दर्शनके अनुभवके समय परिणति हो रही है। जब जीवको निश्चयसम्यक्त्व हो गया और सम्यक्त्वके विषयभूत भूतार्थ अन्तस्तत्त्वकी अनुभूति हो रही है उस स्वानुभूतिके समयमें (चूंकि पर्याय शून्य तो कोई कभी होता ही नहीं है) जो ज्ञानानन्दर–रसास्वादरूप परमतृप्तिरूप परिणति हो रही है। यह व्यवहार–सम्यक्त्व (निश्चयसम्यक्त्वानुभूतिकालवृत्तिरूप व्यवहारसम्यक्त्व) निश्चयसम्यक्त्वकी अनुभूतिके समय ही है। स्वानुभूति न रहनेपर निश्चयसम्यक्त्व होते हुए भी यह सहजानन्दमय व्यवहार नहीं है।

(१७)

निश्चयसम्यग्दृष्टिप्रवृत्तिरूप व्यवहारसम्यक्त्व—जिस जीवको स्वानुभूति सहित निश्चयसम्यक्त्व हो गया, किन्तु अभी स्वानुभूतिमें नहीं है उस जीवकी जो सम्यग्दर्शनके आठ अङ्गोंरूप प्रवृत्ति है, सप्त तत्त्वोंका श्रद्धान है, प्रशमादिप्रवर्तन है यह सब निश्चयसम्यग्दृष्टि प्रवृत्तिरूप व्यवहार सम्यक्त्व है। यह व्यवहार निश्चयके साथ साथ चल रहा है, निश्चयसे पहिले नहीं हैं, तथा यदि उपशमसम्यक्त्व विधि वाला सम्यक्त्व हो और वह मिथ्यात्वके अनुपशान्त व उदय होनेपर नष्ट हो जाय तो यह व्यवहारसम्यक्त्व (निश्चयसम्यग्दृष्टि प्रवृत्तिरूप व्यवहारसम्यक्त्व) बाद में भी नहीं है।

(१८)

निश्चयपाश्चात्य व्यवहार-किसी जीवके उपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व था, अब नहीं रहा, मिथ्यात्वका उदय चल रहा है, ऐसे जीवके पूर्वाभ्यासवश व्यवहारमें धार्मिक प्रवृत्ति चल रही है, सात तत्त्वोंका श्रद्धान चल रहा है, वस्तुस्वरुपकी यथावत् चर्चा चल रही है, व्यवहार अष्टाङ्गका पालन भी चल रहा है, सो उस जीवके जो व्यवहार चल रहा है वह निश्चयपाश्चात्यव्यहार है। यह व्यवहार सम्यग्दृष्टियों के बाह्य व्यवहारके समान है, लोकव्यव्यवहारमें सम्यक्त्वव्यवहारके विरुद्ध नहीं, अतएव लोकोंके लिये अविश्वासका स्थान नहीं। यह निश्चयपाश्चात्य व्यवहार निश्चयसम्यक्त्वके बाद का व्यवहार है।

(१९)

निमित्तमें उपयोग जोड़े तब विकार होता है या निमित्तमें उपयोग न जुड़ाये तब भी विकार होता है इस प्रश्नका समाधान पाने के लिये निमित्त शब्द की प्रेयोगपद्धति समझना आवश्यक है। निमित्त शब्दका प्रयोग दो प्रकारों में पाया जाता है—एक तो अन्वय व्यतिरेकी निमित्त के लिये, दूसरा आश्रयभूत निमित्तके लिये। अन्वय व्यतिरेकी निमित्त, अन्तरङ्गनिमित्त, कर्मोदयविपाक, भावक बन्धनोपाधि व वास्तविक ये सब प्रायः अनर्थान्तर हैं। तथा आश्रयभूत निमित्त, बहिरंगनिमित्त, नोकर्म, विषयभूत निमित्त, ममताश्रयनिमित्त व उपचरित ये सब प्रायः अनर्थान्तर हैं। उपयोगका जुड़ना उसमें सभव है जो ज्ञात हो। ज्ञानतिरस्कार ज्ञातसे भी संभव हैं और अज्ञातसे भी संम्भव है। इसका विवरण इसके प्रसंगों में परीक्षितव्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

(२०)

अन्वयव्यतिरेकी निमित्त और आश्रयभूत निमित्त-जीवविकारका अन्वयव्यतिरेकी निमित्त वह है जिसके साथ जीवविकारका अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है वह है कर्मोदयविपाक। प्रतिनियत कर्मोदय-विपाक होने पर ही प्रतिनियत जीवविकार होता है, विपाकके न होने पर विकार नहीं होता। आश्रयभूत निमित्त वह है जिस बाह्य अर्थ में उपयोग जुड़ने पर कर्मोदय विपाक प्रभव विकार व्यक्त होता है। इस आश्रयभूत निमित्त के साथ जीवविकारका अन्वयव्यतिरेक नहीं। तात्पर्य यह है कि आश्रयभूत निमित्त में जब उपयोग जुड़ता है तब विकारकी अभिव्यक्ति होती है, किन्तु कर्मोदय तो यहां ज्ञात ही नहीं उसमें उपयोग कैसे जोड़ा जा सकता है। वहां तो यह बात होती है कि कर्मोदयविपाक होनेपर ज्ञानका (उपयोगस्वच्छता का) तिरस्कार होता है उससमय जीव शुद्धस्वभावसे च्युत होता हुआ किसी भी आश्रयभूत निमित्तमें अपना उपयोग जुड़ाता है उससमय विकार-की अभिव्यक्ति होती है।

(२१)

अन्वयव्यतिरेकी निमित्त व आश्रयभूत निमित्तका दिग्दर्शन—जैसे किसी पुरुषको घरके नौकरपर क्रोध आया तो वहां क्रोधप्रकृतिका उदयविपाक तो अन्वयव्यतिरिकी (प्रतिनियत) निमित्तकारण है, नौकर आश्रयभूत (उपचरित) कारण है और परिणतजीव उपादान कारण है। यहां नौकरके साथ क्रोधविकारका अन्वयव्यतिरेक नहीं है कि नौकर हो तभी क्रोध हो या नौकर न हो तो क्रोध न हो! नौकर में उपयोग जोड़ा तब वह निमित्त कहलाया। क्रोध करने वाला नौकरको छोड़कर अन्य को भी विषय करके क्रोध करता है, नौकर के न

होने पर भी क्रोध करता है, किन्तु क्रोधप्रकृतिकर्मोदय विपाक ऐसा निमित्त है कि क्रोधप्रकृतिका विपाक हो तभी जीव में क्रोधविकार होता है, क्रोधप्रकृतिका उदय उदीरणान हो तो क्रोधविकार नहीं होता। उदय विपाक शब्द का जब प्रयोग हो तब उदय व उदीरणा दोनोंकी बात सब जगह समझना।

(२२)

अन्तरङ्गनिमित्त व बहिरङ्ग निमित्त–अन्वयव्यतिरकी होने से, एकक्षेत्रावगाही बद्ध होने से, स्वभावतिरोधानका हेतु होने से, अनिवारिता प्रतिफलनका होड होने से कर्मोदयविपाकको अन्तरङ्ग निमित्त कहते हैं। अन्वयव्यतिरेक का अभाव होनेसे, बाह्य क्षेत्रस्थ होने से, उपयोग का विषयभूत हो कर ही आश्रयभूत होने से बाह्य पदार्थ को बहिरंग निमित्त कहते हैं। उपयोग निमित्त में जुड़े तो उस पर निमित्तत्वौपचार किया जाता है यह बात बहिरंग निमित्तपर ही संभव है, अन्तरङ्ग निमित्त याने उदित उदीरित कर्म तो इस विकारी को ज्ञात हो ही नहीं पाता उसमें उपयोग कैसे जुड़ेगा। हां चैत्यचेतक भाव की अनिवार्यता होनेसे कर्मविपाकका तिरोधानपद्धति से प्रतिफलनरूप अबुद्धिपूर्वक आलम्बन है, किन्तु उपयोग का उसमें जुड़ाव नहीं।

[२३]

कर्मोदयविपाक और नोकर्म—कर्मोदयविपाक अचेतन पौग्दलिक कर्मका उदित (अथवा उदीरित) अनुभाग है। इसका अन्तर्व्याप्यव्यापक भाव पौग्दलिक कर्म द्रव्यके साथ है। नोकर्म प्रकट बाह्य द्रव्य है उसकी अवस्था का अन्तर्व्यापकभाव खुदके याने उसी नोकर्मके साथ है। कर्मविपाकके अनुरूप जीव में जो प्रतिफलन व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

विकल्प हुआ है उसका उस समय अन्तर्व्याप्यव्यापक भाव उस जीव के साथ है। अतः कर्म, नोकर्म व जीव इनमेंसे कोई किसी दूसरे का कर्ता नहीं, तो भी ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि पूर्वबद्ध कर्म जिन में बंधकाल में ही प्रकृति, स्थिति व अनुभाग बन गया था उसके उदय-क्षण में क्षुब्ध उदित कर्मके सान्निध्यमें यह सोपाधि चेतन शुद्ध—स्वभावसे च्युत होता हुआ अनुकूल किसी नोकर्म में उपयोग जोड़ता है यों व्यक्त विकारसे क्षुब्ध यह जीव व्याकुल हो जाता है। क्षुब्ध कर्म अचेतन होने से चेतक न हो सकनेके कारण आकुल नही हो सकता।

(२४)

कर्मोदयविपाककी निमित्त कारणरूपता व नोकर्मकी आश्रयभूत-निमित्तता-कर्मोदयविपाक निमित्तकारण है, नोकर्म आश्रयभूत है. विकारपरिणत जीव उपादान है। कर्मविपाक कर्म में है, तथाविधानुभव जीव में है जिसका व्यक्तिकरण नोकर्म में उपयोग जोड़ने से होता है। कर्मका नाम धाम काम की बात सीख सकने वाले कुछ संज्ञी जीवों को छोड़कर वाकी एकेन्द्रियसे पञ्चेन्द्रिय तक के जीव कर्म का नाम तक भी जानते, न सामने कुछ दीखता है उसमें उपयोग कैसे जोड़ा जा सकता है, हां आत्मस्वभाव तिरस्कार कारी प्रतिफलन अवश्य होता है ऐसा अनिवारित अबुद्धिपूर्वक आलम्बन तो है, किन्तु उपयोग जुड़ता है किन्हीं इन्द्रियानिन्द्रिय विषयों में ही। विषयों में उपयोग जोड़कर व्यक्त हुए अथवा विषयोपयोग न होने पर अव्यक्त होने वाले कर्मोदय विपाक प्रभव मेरे कैसे हो सकते हैं, मैं तो ज्ञायक स्वभावमात्र हूँ' इस आस्था से ज्ञान वैराग्य संपन्नता होती है।

(२५)

भावकनिमित्त और विषयभूत निमित्त—फलदान में समर्थता-रूपसे प्रादुर्भूत होकर भावकरूप से होनेवाला यह मोहमीयकर्मोदय-विपाक भावक निमित्त कहलाता है। इस भावक कर्मोदयविपाकका और भाव्यतदनुभव (तदनुवृत्ति) का एकत्व अनुभूत करके यह अशुद्ध जीव विषयभूत अन्य पदार्थों के उपयोग लगाकर अशुद्ध गुणव्यञ्जनपर्यायको व्यक्त करता हुआ व्यक्त दुःखी होता है। भावक भाव्य व विषयभूत पदार्थ तीनों जुदे जुदे अस्तित्व में हैं, अतः कोई किसी दूसरे का कर्ता नही तथापि विकार परसंग बिना हो ही नहीं सकता, सो विकार में ऐसा ही निमित्तनैमित्तक भाव है।

(२६)

भावककी निमित्तकारणरूपता व विषयभूतकी उपचरित निमित्तरूपता—भाव्य विकारसे परिणममान जीव उपयोगको विषयभूत पादर्थों में जोड़ता है, इसे भावक कर्मविपाकका ज्ञान नहीं सो यह उपयोगको अन्वयव्यतिरेकी निमित्त भावककर्म नहीं जोड़सकता, किन्तु भावकभाव्यके संकरमें अपने वास्तविक परिचयको खो कर विषयभूत पदार्थों में उपयोगको जोड़कर विकार परिणामरूप परिणम जाता है। यह यद्यपि यह जीव भावक निमित्तमें उपयोगको नहीं जोड़ सकता तथापि अनिवारित प्रतिफलनरूप आत्मतिरस्कारी प्राकृतिक आलम्बन होता है। यहां यह भेदविज्ञान स्पष्ट है कि उदित कर्ममें अन्तर्व्याप्य व्यापकभावसे रहने वाला विकार मेरा कुछ नहीं और उसका निमित्त पाकर जीवमें उद्भत विकारप्रतिफलन व विकल्प भी मेरा कुछ नहीं, मैं तो स्वभावतः भगवान आत्मा चैतन्य शक्ति मात्र हूँ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

(२७)

बन्धनोपाधि निमित्त व ममताश्रय निमित्त –अनेक प्रकार की बन्धनोपाधि सन्निधानसे एकदम प्रधावित हुए अस्वभावभावोंके संयोगसे स्वभावभावका तिरोधान हुआ, तब अज्ञानविमोहित होकर शरीरादि पुद्गलद्रव्योंमें यह मेरा है ऐसा अनुभव करके यह जीव दुःखी होता है। यहां यह जीव ममताश्रयभूत पदार्थोंमें उपयोग जोड़ता है। बन्धनोपाधिकी तो दृश्यता भी नहीं, फिर भी निमित्त—नैमित्तिकयोग ऐसा है कि बन्धनोपाधिका सन्निध न हुआ कि आस्रवभाव एकदम प्रधावित हो जाते हैं। भेदविज्ञान बलसे स्वस्वरूपका परिचय पानेपर बन्धनोपाधि शिथिल हो जाती है ममता भी निर्मूल हो जाती है। यहां ममताश्रय निमित्त पुद्गलका व आत्माका स्पष्ट भेद है —जीव पुद्गलरूप तथा पुद्गल जीवरूप जब कभी हो ही नहीं सकता तब कोई पुद्गल जीवका (मेरा) कैसे हो सकता है। इसी प्रकार कर्म व कर्मफल भी मेरा कैसे हो सकता है।

(२८)

वास्तविक निमित्त और उपचरित निमित्त-जीव विकारका वास्तविक निमित्त कर्मोदयविपाक है और उपचरित निमित्त विकार परिणमनके समयके उपयोगका विषयभूत, आश्रयभूत पदार्थ है। कर्मोदय होनेपर जीवमें उपयोगस्वच्छताका तिरस्कार होकर विकार परिणमन हुआ। कर्मोदयविपाक बुद्धिगत न होनेसे इसमें उपयोग जुड़ने और उपचार होनेकी बात नहीं हो सकती, किन्तु विषयभूत पदार्थके बुद्धिगत होनेपर विकार अभिव्यक्त होता है, अतः आश्रयभूत निमित्तपर निमित्तत्वका उपचार किया जाता है। यों आश्रयभूत पदार्थ उपचरित निमित्त हैं। यहां यह

शिक्षा लेना कि विषयभूत पदार्थोंमें उपयोग जोड़नेपर कर्मोदयविपाक-प्रभव विकार व्यक्त होता है वह तब उदयागत द्रव्य प्रत्यय भावी संतापक विभावके निमित्तरूप नवीन कर्मका आश्रव होता है तब क्यों विषयोंमें उपयोग जोड़ूं और वर्तमान एवं भावी संकटोंका आधार बनूं।

(२९)

जीवविकार नैमित्तिक है या मात्र जीवयोग्यताजन्य हैं ?—मात्र जीव योग्यताजन्यका यह अर्थ है कि जीवकी योग्यतासे ही पर्यायें होती चली जाती हैं यह बात एक जीवको ही देखते हुए समझने की दृष्टिसे याने निश्चयनयसे ठीक है यदि निमित्तकी चर्चा विधि निषेध किसी भी रूपमें न छेड़ी जाय तो। तिसपर भी व्यवहारनयके विषयका (निमित्तनैमित्तिकभावका) जिसे सही बोध हो, उसकी बुद्धिमें निश्चयनयकी उक्त बात सही है इसी प्रकार जिसने निश्चयनयसे यह निर्णय कर रखा है कि "एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका त्रिकाल भी कर्ता नहीं होता, सभी सत् अपनी परिणतिसे अपने स्वरूपमें परिणमते हैं, ' वे पुरुष जानते हैं कि वस्तु अपने शुद्धस्व—भावरूप होती है उसका स्वप्रत्ययक परिणमन शुद्ध ही होगा, किन्तु उसके विपरीत कोई विकार परिणमन होता है तो वह मात्र स्वप्रत्ययक नहीं होगा, उसमें निमित्त परसंग ही है। अतः जीव विकार नैमित्तिक है।

(३०)

निमित्तनैमित्तिक भाव व विषयविषयिभाव—अशुद्ध उपादान अनुकूल निमित्तके सान्निध्यमें अनुरूप विकार परिणमन करता है व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

इसी विधान से कर सकता आया व इसी विधानसे कर सकता रहेगा। जो परिणमन जिस विधानसे होता हैं उसी विधानसे होता है। यह विभाव पर्यायोंकी उत्पत्तिका विधान है। निरावरण ज्ञान अपनी सहज वृत्ति से जानन परिणमन करता है उसमें त्रिलोकत्रिकाल-वर्ती सब पदार्थ जैसे थे, जैसे हैं, जैसे होंगे, प्रतिबिम्बित होते हैं। ज्ञान और ज्ञेयका मात्र विषयविषयि सम्बन्ध है, अतः जो होगा वह ज्ञात हुआ यह यौगिक नियम है। जो ज्ञात हुआ सो होगा ऐसा फलित होनेपर भी यौगिकनियम नहीं बनता। आत्मार्थीको अन्तस्तत्त्वके आश्रयका पौरुष करना चाहिये, भवितव्यके भरोसे या विवाद विकल्प करके मोक्ष-मार्गके साधनमें प्रमादी नहीं रहना चाहिये।

(३१)

जीवविकार नैमित्तिक होनेपर भी विकाररूप परिणमता तो जीव ही है, कर्म निमित्त तो नहीं, इस निर्णयके प्रसादसे जीव विकार हटानेका शौर्य प्रकट करता है। यदि कर्म परद्रव्य जीवके विकारको करता होता याने कर्म जीवविकाररूप परिणमता होता तो जीव द्वारा विकार हटाये जानेकी अशक्यता होनेसे जीव कायर होकर शौर्य प्रकट नहीं कर सकता था। जीवविकार नैमित्तिक है इस निर्णयके प्रसादसे आत्मार्थी पुरुष जीव विकारसे उपेक्षा करके अविकार आत्म-स्वभावकी आस्था में रहकर विकारको दूर करनेका ज्ञान परिणमनरूप शौर्य प्रकट कर लेता है। आत्मार्थी पुरुष वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्त-नैमित्तिकभाव दोनोंके सुपरिचयसे स्वभावाश्रय करनेका महान लाभ प्राप्त कर लेता है।

(३२)

कर्मविपाक, कर्मविपाकप्रतिफलन, कर्मविपाकप्रतिफलनका

सम्पर्क, नोकर्म में उपयोगका जुड़ना और विकारको आत्मसात् करना इन पञ्च विभावतंत्रोंका परिज्ञान होनेसे क्रमशः विकारको आत्मसात् करना, नोकर्म में उपयोगका जुड़ना, कर्मविपाकप्रतिफलनका संपर्क, ये तीन विडम्बनायें समाप्त हो जाती हैं। पश्चात् इस आत्मशूरता का निमित्त पाकर समस्त घाती व अन्य अनेकों कर्मप्रकृतियां प्रक्षीण हो जानेसे व अवशिष्ट कर्मप्रकृतियां अनुभाग हीन हो जानेसे कर्मविपाक प्रतिफलन ईर्यापथ आस्रवसे निकलकर दूर हो जाते हैं। पश्चात् शेष समस्त कर्मप्रकृतियोंके क्षीण होनेसे कर्म विपाक अपने आधार कर्मके साथ समाप्त हो जाता है।

(३३)

स्वपरैकत्वाध्यास, अध्यवसान, आस्रवभाव, कर्म, शरीर, संसरण ये पूर्व-पूर्व उत्तर-उत्तरके हेतुभूत है। स्वपरैकत्वाध्यासके दूर होने-पर उत्तरोत्तर ये दूर होते जाते हैं। स्वपरैकत्वाध्यास दूर होता है स्वपरभेदविज्ञानसे। स्व अर्थात् चैतन्यशक्तिमात्र सहजात्मस्वरूप, पर अर्थात् चिच्छक्तिमात्रसे अतिरिक्त सभी भाव याने परभाव व समस्त पदार्थ ऐसे स्व और परमें स्वरूपभेद का परिचय करना स्वपरभेद-विज्ञान है। इस स्वपरभेदविज्ञान हो चुके की सनद है शुद्ध चैतन्य-चमत्कारमात्र अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि, धुन व रति हो जाना। इस प्रकार आत्मकल्याणका मूल स्वपरभेदविज्ञान है।

(३४)

अखंड ज्ञायकस्वरूप आत्मामें इतनी बड़ी विडम्बना हो जानेका स्रोत इस प्रकार है—(१) ज्ञाता ज्ञेयका द्वैतभाव, (२) स्वपरद्वैतका आभास, (३) रागद्वेषका परिग्रह, (४) इष्ट अनिष्टपनेका आशय, (५) क्रियाकारककीकल्पना, (६) क्रियाफल भोगनेकी संज्ञा, (७) द्रव्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्ययमें कर्मबन्ध हेतुत्वका उद्भवन, (८) कर्मबन्ध, (९) कर्मविपाक, (१०) कर्मविपाकप्रतिफलन, (११) प्रतिफलितकर्मविपाकका सम्पर्क, (१२) शुद्धस्वभावसे प्रच्यवन, (१३) नोकर्ममें उपयोगका जुड़ना, (१४) विकारको आत्मसात् करना, (१५) पर्यायबुद्धि, (१६) रागद्वेष का विस्तार, (१७) संसारपरिभ्रमण, यह सप्तपदशी संसारी जीवके सहजानन्दका संहार करनेवाली है। भेदविज्ञानके बलसे उपलब्ध अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि करके जब जीव ज्ञानघन स्व सर्वस्वमें मग्न हो जाये तब यह सप्तदशी कुछ भी नहीं ठहरती।

(३५)

भूतार्थ, भेदप्रतिपादक अभूतार्थ, गुणप्रतिपादक अभूतार्थ, पर्याय प्रतिपादक, अभूतार्थ, सम्बन्धप्रतिपादक अभूतार्थ, पर्यायबुद्ध अभूतार्थ, पर्यायात्मपरिचायक अभूतार्थ, उपचार, इन ८ पद्धतियोंमें परमार्थल--द्यरूप तो एक भूतार्थ ही है। अन्तकी पद्धति मिथ्या है, पर्यायात्म-परिचायक अभूतार्थ यह त्रस जीव है यह त्रस जीव है, यह स्थावर जीव है, यह बादर है इत्यादि पर्यायोंको जीव बताना है, सो पर्यायात्मपरिचायक अभूतार्थका वर्णन हिंसादि पापोंके परिहारका प्रयोजक है। पर्यायबुद्ध अभूतार्थ पर्यायमें आत्मद्रव्यकी प्रतीति करके नानारूपताका व्यवहार है, इसका वर्णन इसकी अत्यन्तहेयता व कारणता बनानेके लिये है सम्बन्धप्रतिपादक अभूतार्थ संसारविकार-भावकी अस्वभावता व पर भावताके परिचयके लिये है। पर्याय—प्रतिपादक अभूतार्थ सात तत्त्व, नव पदार्थ व अनेक पर्यायोंके व्यप-देशके लिये है गुणप्रतिपादक अभूतार्थ स्वभावके परिचयके लिये है। भेदप्रतिपादक अभूतार्थ गुण गुणी, स्वभाव स्वभाववान आदिक परि-चयके लिये है। अभूतार्थनयोंका सही उपयोग करके भूतार्थका आश्रय पाकर निष्पन्न समय सारका अनुभवकरलेनेमें परम विवेक है।

(३६)

एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यका कर्त्ता, भोक्ता, स्वामी, अधिकारी कहना उपचार है। इस लोकरूढिमें जैसा कहा जाता है वह मिथ्या है, जैसा कहा जाता है वैसा जो माने वह अज्ञानी है, जैसा कहा जाता है वैसा प्रयोग करनेका प्रयत्न करे वह मूढ है। उपचारमें भी किसी प्रति नियत पदार्थका दूसरे प्रति नियत पदार्थके साथ ही कर्तृ-त्वादिको—क्यों कहा जाता है इसका अन्वेषण किया जावे तो मूलमें स्रोतभूत यथा संभव अन्य अभूतार्थोंका परिचय प्राप्त होता है। उपचारकथन में भी उपचारभाषाको न पकड़कर प्रयोजनिक अभूतार्थसे प्रायोजनिक निर्णय बना कर अभूतार्थके प्रयोजनका उपयोग करनेमें विवेक है।

(३७)

द्रव्य उत्पादव्यय रहित है या उत्पादव्यय सहित है?—द्रव्य द्रव्य तो पूर्ण वस्तुका नाम है, वह उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। उत्पाद व्यय के बिना ध्रौव्य नहीं, ध्रौव्यके बिना उत्पाद व्यय नहीं। द्रव्य शब्दका शब्दार्थ भी यही है कि पर्यायान् अदद्रुवत् द्रवति, द्रोष्यति वा द्रव्यम्, जो पर्यायोंको प्राप्त होता रहा, होता रहता है होता रहेगा वह द्रव्य है। इस द्रव्यवस्तुका ध्रौव्यांश ग्राहक द्रव्यार्थिक-नय से विचार करनेपर ज्ञात होता है-द्रव्य ध्रुव है, उत्पादव्ययरहित है; बंधमोक्षरहित है, इसे शुद्ध द्रव्य कहते हैं, इसको दृष्टि में विकल्पोंकी विश्रान्तिका लाभ मिलता है। उत्पादव्ययांशग्राहक पर्यायार्थिकनयसे द्रव्यवस्तुका विचार करनेपर विदित होता है—द्रव्य उत्पादव्यय—सहित है, पर्यायका उत्पाद व्यय होता है, बन्ध मोक्ष अवस्था होती

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है। इसका उपयोग कायरता मिटानेके लिये करना चाहिये—मैं अज्ञानी, रागी, दुःखी हूँ, किन्तु ये दशायें मिट सकती हैं, मैं ज्ञानी विरक्त आनन्दमय हो सकता हूँ। दूसरा उपयोग—अस्थिर विनश्वर पर्यायकी दृष्टि में स्थिरता व एकरूपताकी अशक्यता जान कर पर्याय-राग छोड़कर निष्पीतपर्याय अन्तः स्वभावका आश्रय करना चाहिये।

(३८)

अन्तस्तत्त्वके आश्रय के लाभ—निस्तरंग सहजज्ञान स्वभावके आश्रयसे उपयोग निस्तरंग हो जाता है। अनाकुल अन्तःस्वरूपके आश्रयसे उपयोग अनाकुल हो जाता है। स्थिर आत्मस्वरूपके आश्रयसे उपयोग स्थिर हो जाता है। निर्विकल्प अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे उपयोग निर्विकल्प हो जाता है। अविकार ज्ञानस्वभावके आश्रयसे उपयोग अविकार होजाता है। सदायुक्त अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे उपयोग उपाधियोंसे मुक्त होजाता है। आनन्द स्वरूप अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे उपयोग आनन्दमय हो जाता है। धन्य है इस सहजसिद्ध चिद्रूप अन्तस्तत्त्वके श्रेष्ठित्वको जिस सहजनिधिके आश्रय करने-वाले उपयोगको पूर्ण सम्पन्न बनाकर एकरस हो जाता है।

(३९)

जीवविकारका निमित्तके साथ सम्बन्ध सोचनेमें लाभ है या उपादानके साथ सम्बन्ध सोचनेमें लाभ है ?—जीवविकार यद्यपि उसकालमें जीवका विपरिणमन है तथापि नैमित्तिक है याने अन्वय-व्यतिरेकी निमित्त कर्मोदयविपाक के होनेपर ही होता है, कर्मोदय-विपाक न होनेपर नहीं होता। इसमें अपनी अत्यन्तविवशता व कायरता दूर करनेके लिये जीवके साथ सम्बन्ध सोचनेमें आत्म-शौर्यलाभ है—मैंने यह विपरिणमन किया, मैं ही इसे मेट कर स्वच्छ

हो जाऊंगा। शेष अनेक लाभ जीवविकारका निमित्तके साथ संबंध सोचने में है—कि यह विकार मेरा स्वरूप नहीं, यह परभाव है, निमित्त का अनुरूप प्रतिफलन है, निमित्त होनेपर ही होता है, निमित्त हटनेपर हट जाता है, इसका निमित्त से मेल है, मुझसे बेमेल है, मैं तो सहज एक ज्ञायक स्वभावमात्र हूँ, ऐसे चिंतन से अन्तस्तत्त्वका आश्रय पानेका महान् लाभ प्राप्त होता है।

(४०)

ज्ञानचेतना ही आनन्दधाम है। ज्ञानस्वरूपमें ही यह मैं हूं ऐसे श्रद्धानस्वभावसे ज्ञानका परिणमनाज्ञान चेतना है। ज्ञानमें ज्ञानस्वरूपके ही जाननरूप अनुभव होना ज्ञानचेतना है। स्थूल रागादि विभावके दूर हो जानेसे ज्ञानस्वरूप में ज्ञानकी धुनरूप स्थिरता ज्ञानचेतना है। सूक्ष्म रागादि विभावके दूर हो जानेसे ज्ञानस्वरूपके जाननकी स्थिरता ज्ञानचेतना है। समस्त रागादि विभावके अभावसे हुई विशुद्ध जानन परिणति ज्ञानचेतना है। ज्ञानके उत्कृष्ट वैभवके साथ विलसित विशुद्ध ज्ञानवृत्ति ज्ञानचेतना है। ये सब उत्तरोत्तर विकसित आनन्दधाम हैं। सत्य सहज आनन्दके लाभका तन्त्र ज्ञान-चेतना ही है।

(४१)

निश्चयतः आत्मा स्वके भवनमात्र है। वह जानता है, अपने-को जानता है, अपने द्वारा जानता है, अपनेलिये जानता है, अपनेसे जानता है, अपनेमें जानता है। समस्त पदार्थोंका व अन्य आत्मा-वोंका आत्मामें अत्यन्ताभाव है, अतः विषयमात्र होनेके कारण इनको जाननेकी बात व्यवहारसे कही जाती है। परमार्थ दृष्टिमें तो स्वयंमें भी षट्कारकपनेकी योजना नहीं है। आत्मा तो जाननमात्र

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है। यह तो आत्माके निजस्वभावका अभ्युदय है जो समस्त पदार्थ इसमें ज्ञेय होते हैं, वस्तुतः आत्माका अन्यकुछ नहीं, तब अन्य द्रव्यों का लगावसमझ कर निज पावन आनदधाम अन्तस्तत्त्वसे हटकर आकुलित होते रहना महामूढता है।

(४२)

यह जीव किसी दूसरेका आपराध नहीं कर सकता और न दूसरेका गुण कर सकता। यह तो मात्र अपना ही अपराध करके चतुर्गतिभ्रमण व विकल्पना का क्लेश भोगता रहता है। वह अपराध मूल में है क्या ? कि अपनी कल्पनामें सारे विश्वकी तोड़ फोड़ करना, पर द्रव्यमें इष्ट अनिष्टबुद्धि करना पर द्रव्यको ग्रहण करना। यह सब चोरी भी है, डकैती भी है। कल्पनामें वस्तुसीमाभित्तिको ढाकर पर पदार्थ को, जिसका कि वही पर स्वामी है, ग्रहण करनेका भावप्रयास करना महा अपराध है। इस अपराध की आलोचना करके इसका प्रत्याख्यान किये विना आनन्दधाममें सत्य विश्राम नहीं पाया जा सकता। अतः आत्मकल्याणके लिये सहज सिद्ध सर्वविशुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्वकी सहज उपासना ही शरण है।

(४३)

एक द्रव्य अपनी व परकी दोनोंकी क्रियायें नहीं कर सकता, केवल अपनी ही क्रियाकर सकता। दो द्रव्य मिलकर एक परिणति नहीं कर सकते, दोनों अपनी अपनी ही परिणति करते। किसी द्रव्यके विकार परिणमनमें वही द्रव्य स्वयं निमित्त नहीं हो सकता, उसमें निमित्त परसंग ही है। विकारपरिणमन उपादानकी परिणति होनेसे उपादानका है, निमित्त विना नहीं होने से निमित्तका है,दोनों

की बजह होनेसे दोनों की करतूत कही जाती है। विकार—परिणमन स्वभाव न होनेसे उपादानका नहीं निमित्तकी परिणति न होनेसे निमित्तका नहीं, दोनोंका एक परिणमन होना असंभव होनेसे दोनोंका नहीं। दृष्टियोंसे सभी वस्तुतथ्य विदित होते हैं। सर्वो शिक्षा यही है कि निरंजन विविक्त आनन्दधाम निजतत्त्वकी आराधना करना।

(४४)

निमित्तनैमित्तिकभाव व वस्तुस्वातंत्र्य दोनोंका वस्तुमें अविरोध है—जैसे पुद्गलकर्मका सब कुछ पुद्गलकर्ममें होता—कर्मत्वपरिणमन, कर्मविपाक, कर्मोपशम. आदि। कर्म विपाकके विशेष हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय व योग। मिथ्यात्वादि चारों द्रव्यप्रत्ययके विशेष हैं मिथ्यादृष्टि आदि १३ गुणस्थान। इन सबका व्याप्यव्यापकभाव है पुद्गलकर्म द्रव्यके साथ। जीवद्रव्यकी सब अवस्थामें जीवद्रव्यमें होती है। कर्मविपाक या चार सामान्य प्रत्यय या १३ विशेष प्रत्यय इनके अनुरूप होने वाला जीवमें आभास तथा ज्ञानविकल्प इनका व्याप्यव्यापकभाव है जीव द्रव्यके साथ। इन सब में परस्पर—निमित्तनैमितिकभावय है, फिर भी वस्तुस्वातंत्र्य भी कैसा अडिग है कि इतने घनिष्ट सम्पर्कमें भी प्रत्येक द्रव्यकी अवस्थाका व्याप्य—व्यापक भाव उस उस ही द्रव्यके साथ है।

(४५)

व्यवहार चारित्र हेय है या उपादेय है या कब हेय है कब उपादेय है—शुभ प्रवृत्तिरूप चारित्रकी ३ भूमिकायें है—(१) सम्य—क्त्वसे पहिले होने वाला व्ययहारचारित्र, (२) सेम्यक्त्वके साथ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होनेवाला व्यवहार चारित्र, (३) जो सम्यक्त्व नष्ट हो सकता है उसके नष्ट हो जानेपर होने वाला व्यवहारचारित्र। प्रथम व्यवहार चारित्र मिथ्यादृष्टिके होता, जो बाह्यप्रवृत्तिकी समानता होनेसे उपचरित है। द्वितीय व्यवहारचारित्र सम्यक्त्वसहभावी होनेसे यथार्थ है। तृतीय व्यवहारचारित्र संस्कार रूप होनेसे आपतित है। तीनोंके हेय उपादेयके उत्तर संभिन्न है।

(४६)

सम्यक्त्व प्रागजात व्यहार चारित्रके आरम्भक मिथ्यादृष्टिजीव हैं उनको अशुभोपयोगसे बचनेकी, पापारंभोंसे बचनेकी, तीव्र कषाय के संतापसे बचनेकी आवश्यकता है, अतः उनको यह व्यवहार चारित्र उपादेय है, जिसकी प्रयोजकता यह है कि नरकादि दुर्गतियों-के कारणभूत पापोंसे बचें, तीव्र असाताके ताप से बचें, ताकि सौताके वातावरणमें रहकर और साधुसंत—समागम, प्रभुदर्शन, सदुपदेश पा कर सम्यक्त्वका लाभ पा सकें और विशिष्ट ज्ञानाराधनाके बलसे सम्यक् व्यवहार चारित्र पा सकें। यद्यपि सम्यक्त्वप्रागजात व्यवहार-चारित्र मोक्षमार्ग का साधक नहीं, तथापि सम्यक्त्वलाभकी पात्रता बनानेका एक साधन होनेसे आत्मदर्शन न होने तक यह उपादेय है। सम्यक्त्व हुए बाद यह स्वयं हेय हो जाता और यथार्थ व्यवहार—चारित्र कथंचित् उपादेय हो जाता है।

(४७)

सम्यक्त्वसहभावी व्यवहार चारित्रका मूलप्रयोजन है सम्य—क्त्वमें जिस स्वरूपका अनुभव किया है उस स्वरूपका अनुभव स्थायी हो जाना। अतः जब तक समाधिका विकास नहीं, तब तक यह

उपादेय है। समाधि होनेपर याह स्वयं हेय हो जाता है। व्यवहार-चारित्रका पालन करते हुए भी व्यवहारचारित्रसे विविक्त सहज ज्ञायकभावरूपमें अपनी प्रतीति करता है। सहज चित्स्वभावमें निस्तरंग नीरंग मग्न होनेकी धुनमें वर्तमान परिस्थितिव्यवहार—चारित्रका पालन करनेको प्रेरित करती है। व्यवहारचारित्रके प्रसादसे व्यवहार चारित्रकी प्रवृत्तिसे विविक्त निष्क्रिय चित्स्वभावमें मग्न न होने तक व्यवहारचारित्र उपादेय है।

(४८

सम्यक्त्वविलयजातव्यवहारचारित्रसम्यक्त्वके होते संते जो व्यवहारचारित्र होता था वह यथार्थ था। अब मिथ्यात्वका उदय होनेपर सम्यक्त्व भ्रष्ट भी हो गया तो भी संस्कारवश प्रवृत्ति पूर्ववत् होती रहती है। यह व्यवहार चारित्र संस्कार रखकर पुनः मोक्षमार्ग में लगनेका अवसर प्रदान करता है, मंद कषायरूप होनेसे भावी कालमें धार्मिक वातावरण पानेके योग्य सताका लाभ करता है। यह व्यवहारचारित्र पुनः सम्यक्त्वलाभ होने तक उपादेयहै, सम्यक्त्व—लाभ होनेपर सम्यक्त्व सहभाव व्यवहारचारित्र होता है, जिसके प्रसादसे जिससे विविक्त अन्तस्तत्त्वमें मग्नता न होने तक उपादेय है, उस मोक्षमार्गकी परंपराका संभावित हेतुभूत यह सम्यक्त्व—विलयजात व्यवहार चारित्र है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

आध्यात्म योगी पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी सहजानंद महाराज
द्वारा विरचित

卐 परमात्म–आरती 卐

ॐ जय जय अविकारी

जय जय अविकारी ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी । ॐ ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव संतति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपत भारी ॥ २ ॥ ॐ
परसंबंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परम ब्रह्मका दर्शन, चहुंगति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक शुचिगुण भंडारी ॥ ४ ॥ ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानधन, सहज शान्तिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1